प्रथम नगरीय सभ्यता का नगर नियोजन

डॉ. राज कुमार सिंह
drrks001@gmail.com

सारांश
विश्व भर में विद्यमान सभ्यताओं में एक प्रचीन सभ्यता हमारी सैन्धन सभ्यता है जो मौलिक रूप में नगरीय सभ्यता थी। पुरातात्विक प्रमाणों के आधार पर सैन्धव सभ्यता के नगरीय नियोजन का पर्याप्त अनुशीलन किया गया है। इस सभ्यता के अनेक केंद्र प्रकाश में आये हं जिनसे एक ऐसी समृद्ध नगरीय व्यवस्था का पता चलता है जो पूरी दुनिया को चकित करती है। 21 वीं सदी में हम जितने व्यवस्थित नहीं हैं उससे कहीं अधिक सुव्यवस्थित हड़प्पा संस्कृति के लोग थे। इस सभ्यता में वे सभी तत्व मिलते हैं जनसे नगरों को पूर्णता प्रदान होती है। यद्यपि छठीं शताब्दी ईसापूर्व में दूसरी नगरीय सभ्यता के गौरवशाली अवशेष भी मिलते हैं जो हमारी नगरीय परंपरा की सात्यता का दर्शन कराते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में उपर्युक्त प्रथम नगरीय सभ्यता के नियोजन संबंधी तत्वों की शोधपरक विवेचना का प्रयास किया गया है।

भारत के इतिहास में नगर तत्त्व के लक्षण सर्वप्रथम सैन्धव सभ्यता में प्राप्त होते हैं। यही कारण है कि इस काल को प्रथम नगरीय क्रान्ति भी कहा गया है। इस सभ्यता के विकास में सिन्धु एवं उसकी सहायक नदियों का महत्वपूर्ण योगदान था। इनकी उपत्यकाओं में अवस्थित हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ों–सदृश भव्य नगर ताम्रयुग के आदर्श ऐतिहासिक केन्द्र थे।[1]इस सभ्यता की विभिन्न तिथियाँ बताई गई हैं लेकिन सर्वमान्य तिथि 2500 ई0पू0 से 1500 ई0पू0 है।[2]हड़प्पा नामक पुर पश्चिमी पंजाब (सम्प्रति पाकिस्तान) के मांटेगोमरी जिले में रावी नदी के तट पर स्थित था, जिसके स्थान पर आज वहाँ एक विशाल ग्राम बसा हुआ हैं इसके भग्नावशेषों में प्राप्त प्राचीन ईंटें स्थानीय नागरिकों द्वारा गृह–निर्माण के अभिप्राय से बहुशः स्थानान्तरित की गई थीं। लाहौर–मुल्तान रेलवे के निर्माण–कार्य में भी वहाँ की ईंटों को उपयोग में लाया गया था। इसका समकालीन एवं समकक्ष नगर मोहनजोदड़ो, सिन्ध के लाड़खान जिले में सिन्धु नदी के तट पर बसा हुआ था। भारतवर्ष के ये दोनों ही आदि पुर वास्तुकला के समान आदर्शों एवं सिद्धान्तों के आधार पर निर्मित थे। इससे प्रमाणित होता है कि उस युग में भारतीय शिल्पी नगर–मापन की निश्चित विधि से अवगत हो चुके थे। यह विशेषता विचारणीय हो जाती है, क्योंकि विश्व के कई देश अभी ग्राम–स्तर से ऊपर नहीं उठ पाए थे।[3]

उपरोक्त दोनों ही स्थानों पर बसे हुए पुर अपने युग के महानगर थे, जिनके निर्माण कला में कतिपय मूलभूत विशेषताएँ स्पष्ट रूप में द्रष्टव्य थी। दोनों ही लगभग तीन मील के घेरे में बसे हुए थे। इनमें से प्रत्येक के दो भाग थे– एक तो दुर्ग भाग, जो नगर का पश्चिमी हिस्सा था तथा दूसरा अवम् नगर (लोवर सिटी)। पुर–निर्माण की यह ऊर्ध्वाधर–योजना (उच्चस्थ एवं अवरस्थ) निर्माण पद्धति थी, जो भारतीय अभियन्ताओं की मौलिक देन थी। दुर्ग–भाग महापुर का विशिष्ट भाग था, जो भारतीय अभियन्ताओं की मौलिक देन थी। दुर्ग–भाग महापुर का विशिष्ट भाग था, जिसमें राजसत्ता एवं अधिकारिमण्डल के आवास तथा विशिष्ट भवन विद्यमान थे। इसका निर्माण धरातल से 40 फीट ऊँचे एक चबूतरे पर किया गया था। इसके चतुर्दिक सुरक्षा–भित्ति, प्रहरी–कक्ष एवं अट्टालक (बुर्ज) निर्मित थे।[4] दुर्ग–सन्निवेश की क्रिया में शिल्पियों ने सतर्कता एवं कुशलता प्रदर्शित की थी। दुर्ग का आकार समान्तर चतुर्भुज होने के कारण भव्य लगता था। अवरस्थ नगर में सामान्य जनता निवास करती थी। दोनों ही स्थानों के दुर्ग उत्तर से दक्षिण की ओर 400 गज से लेकर 500 गज तथा पूर्व से पश्चिम की ओर 200 गज से 300 गज की दूरी में प्रसरित थे। उपर्युक्त रोचक समानताएँ इस तथ्य के ज्वलन्त प्रमाण हैं कि सभ्यता के उस आदिम युग में भारतीय अभियन्ताओं ने नगर– निर्माण की एक सुव्यवस्थित योजना का आविष्कार कर लिया था।[5]

१. हड़प्पा का नियोजन

अधिकांश ने हड़प्पा का समीकरण ऋग्वेद में उल्लिखित 'हरियूपीया' से किया है, जहाँ पर वृचीवन्त, अभ्यावर्ती चायमान द्वारा परास्त किए गए थें वृचीवन्त जाति का उल्लेख मात्र यहीं पर ही हुआ है। इस ग्रन्थ में यदि कहीं अन्यत्र भी इसका सन्दर्भ आता, तो वर्णनों के आधार पर इसकी पहचान की समस्या यथार्थ रूप में सुलझाई जा

Vol. 9, Issue: 7, July: 2021
ISSN:(P) 2347-5404 ISSN:(O)2320 771X

सकती थी।[6] ह्वीलर का अनुमान है कि वृचीवन्त से तात्पर्य वरशिख से हो सकता है, जो इन्द्र का शत्रु था। इन्द्र आर्यों के एक प्रमुख देवता थें अतएव हड़प्पा (हरियूपीया) एक ऐसे स्थान का प्रतिनिधित्व करता है, जहाँ आर्य जाति ने अनार्य जाति को परास्त किया था। इधर विद्वानों का विश्वास बढ़ता जा रहा है कि आर्यों ने ही हड़प्पा के दुर्ग का संहार किया था। उक्त समीकरण के संबंध में अभी कुछ निश्चयात्मक निर्णय देना दुष्कर है।[7]

हड़प्पा का नगर दो भागों में विभक्त था– (1) ऊर्ध्व नगर एवं (2) निम्न नगर (अधःस्थपुर)। इस प्रकार यह 'ऊर्ध्वाधर'– योजना के अन्तर्गत आता था। दुर्ग–भाग पुर का सबसे महत्वपूर्ण एवं आकर्षक अंग था। इसके स्थान पर अब एक उच्च टीला वर्तमान है, जिसे पुराविदों ने 'माउण्ड ए–बी' की संज्ञा प्रदान की है। यह आकार में समान्तर चतुर्भुज के तुल्य था, जो उत्तर से दक्षिण की ओर 460 गज एवं पूर्व से पश्चिम की ओर 215 गज था।[8] हड़प्पा के दुर्ग का स्वरूप भारतीय वास्तुशास्त्र के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। समान्तर चतुर्भुज–सदृश आकृति शुभ एवं श्रेयस्कर मानी जाती थी।[9]

हड़प्पा का दुर्ग एक चबूतरे पर बना हुआ था, जो धरातल से 20 फिट से 25 फिट तक ऊँचा तथा अंशतः मिट्टी एवं अंशतः कच्ची ईंटों द्वारा सुदृढ़ निर्मित था। इसके भीतर राजकीय भवन, कर्मचारियों के आवास तथा श्रमिकों के गृह बने हुए थे। चौड़े राजमार्ग सुव्यवस्थित योजना के अनुसार निर्मित थे तथा देखने में भव्य थे। सुरक्षा की दृष्टि से यह दुर्ग मिट्टी की एक दीवाल (प्राचीर) द्वारा चतुर्दिक् परिवेष्ठित था, जो अपने आधार पर 45 फिट चौड़ी थी। इस प्रकार की सुरक्षा भित्ति (प्राकार) के निर्माण की परम्परा हमारे देश में चिरकाल तक वर्तमान थी। इस कोटि के 'प्राकार' को प्राचीन भारतीय साहित्य में 'पांसुप्राकार' अथवा 'मृददुर्ग' कहा गया है, जिसको कालान्तर में (मध्यकाल में) धूल–कोट कहने लगे थे।

हड़प्पा का प्राकार, मृदुदुर्ग का प्राचीनतम भारतीय उदाहरण था। इस सुरक्षा–भित्ति में द्वार एवं बुर्ज बने हुए थे।[10] सुरक्षा की दृष्टि से हड़प्पा का दुर्ग चतुर्दिक् एक खाई (परिखा) के द्वारा भी परिवेष्ठित किया गया था। दुर्ग के उत्तर की दिशा में लगभग 300 गज के पेटे में त्रिविध निर्माण किया गया था। इस क्षेत्रफल में 30 फिट ऊँचा एक टीला वर्तमान है, जिसे 'माउण्ड एफ' की संज्ञा प्रदान की गई थी। इसके उत्खनन की क्रिया में तीनों ही कोटि के निर्माण प्रकाश में लाये गये। प्रथम वर्ग के निर्माण–कार्य के पुरातत्वीय प्रमाण सब से पहले दुर्ग के समीप ही उत्तर– दिशा में प्राप्त हैं। इस कोटि में श्रमिकों के घर आते थे, जो दो पंक्तियों में निर्मित थें उत्तर की पंक्ति में सात एवं दक्षिण की पंक्ति में आठ गृहों के वर्तमान होने के दृष्टान्त प्राप्त हुए हैं। ये श्रमिक–आवास राजकीय योजना के अनुसार निर्मित थे।[11] श्रमिक–गृहों के समीप ही 16 भट्ठियों के वर्तमान होने के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। इनमें अनुमानतः कोयले एवं गोबर के द्वारा ईंधन (समिधा) का कार्य लिया जाता थां अग्नि को प्रज्वलित करने के निमित्त सम्भवतः धौकनी प्रयोग में लाई जाती थी। इन भट्ठियों में काँसे को गलाने का काम लेते रहे होंगे।इनकी समीपस्थता इस बात का प्रमाण है कि उक्त आवास श्रमिक–गृह ही रहे होंगे।

इस प्रकार की परम्परा दजलाफरात घाटी एवं नील–उपत्यका के नगरों में भी प्रचलित थी।[12] श्रमिकों के आवास मुख्य नगर के बाहर कहीं एकान्तिक स्थान पर पृथक् रूप में बने होते थे। उदाहरणार्थ तेल–एल–अमर्ना (चौदहवीं शताब्दी ईसा पूर्व) में समाधि निर्माताओं के घर प्रधान नगर से लगभग एक मील की दूरी पर बने थें देर–एल–मदीनह (सोलहवीं शती ईसा पूर्व) में मिस्र सम्राटों की समाधियों के निर्माता शिल्पियों के गृह सब से अलग बने हुए थे। गिजेह में पिरेमिड बनाने वाले स्थापत्यकार रहते थें इन श्रमिकों एवं शिल्पियों से राज्य विष्टि बेगार ले सकता था। यह प्रथा–साम्य सैन्धव सभ्यता तथा मिस्र एवं मेसोपोटामिया की समकालीन सभ्यताओं के पारस्परिक सम्पर्क को अभिव्यंजित करता है।[13]

हड़प्पा नगर नियोजन में उक्त श्रमिक–आवासों के ठीक उत्तर में द्वितीय कोटि के निर्माण किए गए थे, जिसमें गोल चबूतरे आते थे। इनमें अठारह चबूतरों के प्रमाण उत्खनन–क्रिया में उपलब्ध हुए थे। इनका व्यास दस से ग्यारह फिट के लगभग था। ये श्रमिक–चबूतरे एक केन्द्रीय चार अथवा कभी पाँच वृत्त के रूप में थे तथा ठोस ईंटों द्वारा सुदृढ़ निर्मित थे। इनके नाभि–स्थान में एक गोलाकार गड्ढा छोड़ दिया गया था, जिसमें लकड़ी की ओखली बिठाई गई थी। उत्खनन–क्रिया में इनमें अन्न एवं भूसे के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। इससे लगता है कि ये चबूतरे अनाज को कूटने के प्रयोजन से बनाये गए थे। अन्न कूटने का कार्य लकड़ी के मूसल से लिया जाता था। यह काम उन्हीं श्रमिकों से लिया जाता था, जो इनके समीपस्थ आवासों में रहते थे। इस प्रकार का एक गोल चबूतरा (संख्या–16) मार्टिमर ह्वीलर के द्वारा 1946 ईसवी में प्रकाश में लाया गया था।इन गोल चबूतरों के ठीक उत्तर लगभग एक सौ गज की दूरी पर अन्न के बखार 900 वर्ग फिट के क्षेत्र में रावी नदी के तट के समीप ही निर्मित थें

इनकी संख्या कुल बारह थी। ये दो पंक्तियों में वर्तमान थे। प्रत्येक पंक्ति में इनकी संख्या छह थी। इनका परिमाण भी लगभग समान था (50 फिट × 20 फिट)। इनकी शिल्प–विधि का सादृश्य सूचित करता है कि ये राजकीय निर्माण–योजना के अन्तर्गत आते थे। रावी–तट के सन्निकट इनकी अवस्थिति प्रमाणित करती है कि जल–मार्ग द्वारा अन्न मँगाया एवं बाहर भेजा जाता होगा।[14]

निश्चित ही हड़प्पा के नागरिक जीवन में इन धान्यागारों का स्थान महत्वपूर्ण था। ये राजकीय कोष–विभाग के अन्तर्गत आते थे तथा इनके निर्माण के उद्देश्य विविध थे। मुद्रा –विहीन युग होने के कारण तत्कालीन आर्थिक जीवन वस्तुविनिमय पर आश्रित था। अतएव राज्य को अन्न के बड़े बखारों की आवश्यकता थी, जिससे कर्मचारियों को वेतन एवं श्रमिकों को दैनिक मजदूरी देना सम्भव हो सके। राजकीय कर भी अन्न के रूप में एकत्र होते थे। परिणामतः विशाल अन्नागारों का निर्माण आवश्यक प्रतीत हुआ, जिनमें प्रभूत मात्रा में अन्न–संचय का अवकाश सम्भव हो सके। दुर्भिक्ष एवं आकस्मिक अवसरों पर भी अनाज के इन गोदामों का एक विशेष महत्व था। उनका अस्तित्व सूचित करता है कि उस समय के नगर–जीवन का मूलाधार अन्न ही था। यहाँ उल्लेखनीय हो जाता है कि दजला–फरात घाटी के नगरों में भी उस समय अन्न के विशाल कोठारों के निर्माण की परम्परा विद्यमान थी।[15] उर के एक लेख (लगभग 2130 ईसा पूर्व) से ज्ञात होता है कि वहाँ के एक ताम्रयुगीन धन्यागार से 4020 दिनों तक श्रमिकों को दैनिक पारिश्रमिक दिया जा सकता था। उर के एक अन्य प्राचीन लेख (लगभग 2000 ईसा पूर्व) के अनुसार वहाँ के किसी धान्यागार का अधीक्षक इससे 10,913 श्रमिकों की दैनिक मजदूरी के वितरण की व्यवस्था करता था। बड़े धान्यागारों में आपसी शर्तों के आधार पर लेन–देन की प्रथा प्रचलित थी। एक ताम्रयुगीन लेख के अनुसार मेसोपोटामिया के लुलमू नामक स्थान के एक अन्नागार के ऋण में दिए हुए अनाज को सूद–सहित सम्बन्धित धान्यागार को लौटाया था। आभिलेखिक साक्ष्य के अनुसार सीरिया में नरमसिन नामक स्थान पर 2300 ईसा पूर्व में एक कोष्ठागार विद्यमान था। मिस्र में भी कर–संग्रह के उद्देश्य से इस समय विशाल धान्यागार निर्मित थे।[16]

सैन्धव नगर हड़प्पा के पुर–सन्निवेश के सिद्धान्तों के अनुसार दुर्ग के दक्षिण का भाग श्मशान भूमि (शवाधान–स्थान) के रूप में निर्दिष्ट था। इसका वर्गीकरण प्रायः दो भागों में किया जाता है– खण्ड–समाधियाँ ('सिमेटरी एच') एवं पूर्ण–समाधियाँ ('सिमेटरी आर 37')। प्रथम वर्ग की कब्रगाह (शवाधिस्थान, 'सिमेटरी एच') दुर्ग के ठीक दक्षिण में विद्यमान था, जिसमें धरातल से छह फिट नीचे थी, जो अधिक प्राचीन थी। उत्तरी सतह (स्ट्रेटम) वर्तमान भूतल से तीन फिट नीचे थी। इसका काल निचली परत के उपरान्त के समय का द्योतक था। दोनों में ही शव बिना किसी तैयारी के ही विसर्जित कर दिए गए थे।[17]इसके प्रतिकूल समाधि–भूमि (सिमेटरी आर 37) में पूर्ण–समाधियों के प्रमाण विद्यमान हैं। यह शवाधिस्थान 'एच' के ठीक दक्षिण में था। इनमें मृतकों को दैनिक जीवन की उपयोगी सामग्रियों (उदाहरणार्थ चूड़ियाँ, कण्ठाभरण, अँगूठी, दर्पण आदि श्रृंगार–सामग्री) के साथ विधिपूर्वक गर्भित किया गया था।

२. मोहनजोदड़ों का नियोजन

उदयनारायण राय के अनुसार मोहन जोदड़ों के नगर का भी सन्निवेश उन्हीं मूलभूत आदर्शों द्वारा निर्धारित था, जिनके आधार पर हड़प्पा के पुरमापन की क्रिया सम्पन्न हुई थी।[18] इस सादृश्य से स्पष्ट है कि सैन्धव सभ्यता–काल तक भारतीय अभियन्ताओं ने प्रामाणिक नगर–निर्माण–पद्धति का सृजन कर लिया था। मोहनजोदड़ों का नगर भी दो मुख्य भागों में विभक्त था–दुर्ग–भाग एवं नीचस्थ–पुर (लोवर सिटी[19])। इस प्रकार यह पुर भी ऊर्ध्वाधर द्वयंग नगर–निर्माण की पद्धति का ही एक अति प्राचीन भारतीय दृष्टान्त था। दुर्ग–भाग नगर के पश्चिम में वर्तमान था। इसके ध्वंसावशेषों का प्रतिनिधित्व उच्च टीलों द्वारा किया जाता था। इस नगर–भाग में राजपुरुषों के आवास एवं विशिष्ट नागरिकों के गृह वर्तमान थे। निचले–पुर पूर्व की दिशा में स्थित था, जिसमें सामान्य पुरवासी निवास करते थे।[20] यह दुर्ग भी समान्तर चतुर्भुज की आकृति के सदृश था तथा इसके भी निर्माण की क्रिया में शिल्पियों ने उच्च प्रतिभा का परिचय दिया था। यह एक उन्नत कृत्रिम स्थान (चबूतरे) पर बसा हुआ था। जिसकी ऊँचाई उत्तर दिशा में धरातल से 40 फिट एवं दक्षिण में 20 फिट के लगभग रही होगी। यह मूलतः मिट्टी एवं अंशतः ईंटों द्वारा भी ठोस निर्मित था। इसके चतुर्दिक् मिट्टी का थूहा खड़ा किया गया, जो 43 फीट के लगभग चौड़ा था। महाभारत,[21] अर्थशास्त्र[22], युक्तिकल्पतरु[23] एवं समरांगण–सूत्रधार[24] के 'वप्र'[25] (विस्तृत वेदिका) के साथ यह समीकरणीय है। मोहन जोदड़ों के थूहे (वप्र) के ऊपर सुरक्षाभित्ति निर्मित की गई, जिसकी तुलना हम प्राचीन भारतीय साहित्य के 'प्राकार' (परकोटे) से कर सकते हैं।मोहनजोदड़ो के प्राकार में शिखर (अट्टालक) भी निर्मित थे। दुर्ग के दक्षिण–पूर्व कोने पर पकी ईंटों द्वारा निर्मित शिखर (अट्टालक) के अवशेष मिलते हैं। इसके पश्चिम किनारे पर भी एक तत्कालीन बुर्ज़ (कंगूरा या मीनार) के खण्डहर उपलब्ध हैं, जो ईंटों द्वारा निर्मित था। इसकी ऊँचाई अब भी

दस फिट के लगभग है। नगर–प्राकार में प्रत्येक प्रधान दिशा में द्वार (गोपुर) खोले गए थे, जिनके समीप भीतर की ओर प्रहरी कक्ष बने हुए थे। सुरक्षा–व्यवस्था की यह परम्परा हमारे देश में मध्यकाल तक वर्तमान थी। चौड़े राजमार्गों द्वारा यह दुर्ग सुविभक्त था।[26] दुर्ग के भीतर चौड़ी एवं सुथरी गलियाँ भी खुली थीं, जो शिल्पशास्त्रों की 'वीथी' अथवा 'वीथिका' का स्मरण दिलाती हैं।[27] इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि प्राचीन भारतीय नगर–निर्माण पद्धति के बीज सैन्धव सभ्यता के पुर–सन्निवेश में उपलब्ध हैं।[28]दुर्ग के भीतर के महत्वपूर्ण विन्यासों में विशाल स्नानागार, बृहत् धान्यागार एवं सभामण्डप उल्लेखनीय हैं। ये अपने निर्माण की उत्कृष्टता एवं मौलिक योजना के लिए प्रसिद्ध हैं।

वृहद ्स्नानागार– विद्वानों ने दुर्ग के भीतर सबसे विशिष्ट निर्माण प्रायः इसी भवन को माना जाता है। उत्तर से दक्षिण की ओर यह 180 फिट तथा पूर्व से पश्चिम की ओर 108 फिट तक विस्तृत था। इसकी बाहरी दीवारें अपने आधार पर 7 से 8 फिट चौड़ी थीं। इसके केन्द्रीय खुले आँगन के मध्य में एक जलकुण्ड वर्तमान था; जो 29 फिट लम्बा, 23 फिट चौड़ा एवं 8 फिट गहरा था। आँगन के चतुर्दिक बरामदे बने हुए थे, जिनमें तीन के पीछे गलियारे एवं कोठरियां बनी थीं। दक्षिण के बरामदे के दोनों कोनों पर एक छोटी कोठरी एवं गलियारा था। उत्तरी बरामदे के पीछे छोटे–बड़े कई कमरे बने हुए थे। पूर्वी बरामदे के पीछे एक ही पंक्ति में कई छोटी कोठरियाँ निर्मित थीं, जिनमें से एक (कमरा संख्या–16) में जलकूप खुदा हुआ था इस कुँए के कुण्ड के भीतर जल भरने की व्यवस्था की गई थी।[29] स्नानागार की भीतरी दीवारें जल को रोकने में पूर्णतया समर्थ थीं। इन भित्तियों की ईटों में एक विशेष प्रकार का मसाला लगाया गया था, जिसमें विलोचिस्तान में पाए जाने वाले चट्टानों का चूर्ण (बिटूमेन), बालू(ऐसफाल्ट) एवं खड़िया मिट्टी की बुकनी मिलाई जाती थी। इस स्नान–कुण्ड के दक्षिण–पश्चिम कोने पर एक छिद्र बना हुआ, जिसका मुख समीपस्थ नाले की ओर खुलता था। इस प्रकार की व्यवस्था के कारण आवश्यकतानुसार कुण्ड का जल बाहर निकाल दिया जाता था।[30]यह तत्कालीन उन्नत अभियांत्रिकी का ज्वलन्त प्रतीक है। ईट–निर्मित इस सुदृढ़ भवन की कोठरियों में सीढ़ियों के निर्माण के प्रमाण उपलब्ध हैं, जिससे प्रतिपादित होता है कि इसमें कम–से–कम एक मंजिल और भी अवश्य रही होगी। इस गृह के अवशेषों में राख एवं लकड़ी के कोयलों के भी उदाहरण मिले हैं। इससे स्पष्ट है कि इस भवन के निर्माण में अभियन्ताओं ने काष्ठ शिल्प का भी प्रयोग किया था। जान मार्शल का अनुमान है कि लकड़ी की कारीगरी में शिल्पियों ने काट–छाँट के काम का अच्छा दृष्टान्त प्रस्तुत किया होगा, क्योंकि काष्ठ शिल्प भारत की एक अति प्राचीन परम्परा थी।[31]

यह भवन मूलतः इष्टका–निर्मित ही था। इसके ध्वंसावशेषों से प्राप्त ईंटे बताती हैं कि उनके निर्माण की कला उस युग में कितनी विकसित दशा में थी। मोहनजोदड़ों के विशाल स्नानागार के विन्यास का प्रयोजन अभी तक यथातथ्य निर्धारित होने से रह गया है। यह कोई वैयक्तिक गृह था अथवा सार्वजनिक, यह भी इतिहास का एक विवादास्पद प्रश्न है। कतिपय पाश्चात्य विद्वानों का अनुमान है कि इसका संबंध नगर के धार्मिक जीवन से किसी रूप में रहा होगा। अवसर–विशेष पर इसमें स्नान करना पवित्र कृति के रूप में परिगणित किया जाता होगा।[32] मार्टिमर ह्वीलर का तो यहाँ तक अनुमान है कि इस भवन की कोठरियों में पुजारी लोग निवास करते थे, जो धार्मिक प्रक्षालन के अभिप्राय से निश्चित समय पर जलकुण्ड में उतरते रहे होंगे।[33] दुर्ग–प्रांगण में इस स्नानागार की अवस्थिति से लगता है कि ये पुजारी राज्य की ओर से नियुक्त थे। दूसरी संभावना है कि धनसम्पन्न विशिष्ट नागरिकों द्वारा यह निर्मित रहा हो। इस स्नानागार का प्रयोग सम्भवतः उन्हीं तक सीमित रहा हो।

मोहनजोदड़ों का जलकुण्ड एक विलक्षण कोटि का निर्माण था। तड़ाग् होने के अतिरिक्त यह एक आवासगृह भी था। यह विशेषता अन्यत्र अप्राप्य थी। अतएव इसे स्नानागार की संज्ञा प्रदान करना कहीं अधिक सार्थक होगा। जल को भरने एवं खाली करने की व्यवस्था, चतुर्दिक् सीढ़ियों एवं वेदिकाओं के निर्माण तथा भीतरी दीवालों में हल को रोकने की क्षमता के वर्तमान होने की दृष्टि से स्थापत्य का यह ताम्रयुगीन भारतीय उदाहरण समकालीन किसी भी उच्च सभ्यता में अप्राप्य था।[34] अपने निर्माण की उत्कृष्टता के कारण इसने विदेशी विद्वानों को भी स्वतः स्वीकार एवं घोषित करने के निमित्त बाध्य किया था कि अभियान्त्रिकी का यह एक मौलिक दृष्टान्त था, जिसकी तुलना समकालीन विश्व में अनुपलब्ध थी। इससे प्रतिपादित होता है कि सैन्धव सभ्यता एक स्वदेशी सभ्यता थी। कतिपय विदेशी मनीषियों द्वारा इसे बाह्य सभ्यता की देन निर्दिष्ट करने की जो भ्रान्तिमूलक अवधारणा प्रतिपादित की जाती है, वह उपर्युक्त वास्तु– दृष्टान्त से निर्मूल सिद्ध हो जाती है।[35]

अन्नागार– मोहनजोदड़ों के दुर्ग–प्रांगण में दूसरामहान् निर्माण वहाँ का विशाल अन्नागार था। यह हड़प्पा के बखारों से कहीं विस्तृत था। मार्शल महोदय इसका केवल आंशिक उत्खनन कर पाए थे। उन्हें पाँच फिट की ऊँचाई में ईंटों से निर्मित कई सुदृढ़ खण्ड दिखाई दिए थे, जिनसे संशय हो गया था कि वे हमाम रहे होंगे। परन्तु उन्हें भी अपनी

अवधारणा पर सन्देह था।[36] जब कालान्तर में 1950 ईसवी में मार्टिमर ह्वीलर ने इसके पूर्ण भाग का उत्खनन किया, उस समय पहली बार यह ज्ञात हुआ कि यह खण्डहर वहाँ पर निर्मित किसी विशाल धान्यागार का मूलाधार (चबूतरा) था। इसकी बाहरी दीवालें इतनी ठोस एवं ढालुआ कोटि की हैं कि वे किले की दीवाल–सदृश लगती हैं। सम्पूर्ण अन्नागार की लम्बाई अपने मूल काल में 150 फिट एवं चौड़ाई 75 फिट रही होगी। इसके भीतर समान रूप, किन्तु भिन्न परिणाम वाले इष्टका–निर्मित अन्न के 27 खत्ते (कुठले) विद्यमान थे। प्रत्येक दो खत्तों (कोठारों) के बीच आने–जाने के रास्ते भी छोड़ दिए गए थे। इस धान्यागार के गर्भ–भाग के नीचे वैज्ञानिक पद्धति पर वायु–संचार की अपेक्षित व्यवस्था की गई थी। इस प्रकार इसमें अन्न भरने एवं खाली करने का भी सुप्रबन्ध था। इन रूपों में इसका बृहत् वास्तु–दर्शकों एवं कठिन आलोचकों को भी प्रभावोत्पादक सिद्ध होता है। ईंटों के प्रयोग के अतिरिक्त इसके निर्माण में काष्ठ–शिल्प के वैभव का भी प्रदर्शन द्रष्टव्य था।[37]

मोहनजोदड़ों के नगर जन–जीवन में इस अन्नागार का स्थान हड़प्पा के कोठारों के सदृश ही महत्वपूर्ण था। परन्तु जहाँ तक इसके स्थापत्य का प्रश्न है, यह हड़प्पा के बखारों से कहीं अधिक विषम एवं संकुलित था। अन्नागार–निर्माण की परम्परा, कालान्तर में, नगर से लेकर ग्राम तक विशेष रूप से प्रचिलत हो गई। प्राचीन भारतीय साहित्य में कुशूल, कुसूल, धान्याकुसूल, शाला, धान्याशाला, कौष्ठी एवं कोष्ठागार शब्द बहुशः प्राप्य हैं।

सभा–गृह– मोहनजोदड़ों के दुर्ग–सन्निवेश में वहाँ के सभा–गृह का भी स्थान महत्वपूर्ण था। यह एक 90 फिट वर्गाकार भवन था। अपनी कोटि का यह प्रथम पुरातत्त्वीय उदाहरण था। आद्योपान्त सुदृढ़ ईंटों द्वारा इसका विन्यास किया गया था तथा अपने युग में एक विशिष्ट निर्माण के रूप में यह प्रसिद्ध रहा होगा। इसमें चार पंक्तियों में ईंटों से बने हुए बीस स्तम्भ प्राप्य हैं। प्रत्येक पंक्ति में स्तम्भ–संख्या पाँच है। अनुमान किया जाता है कि विशिष्ट जनों के बैठने के निमित्त इसमें आसन भी निर्मित थे। सम्भवतः प्रधान व्यक्ति के बैठने के उद्देश्य से मुख्य आसन की भी व्यवस्था पृथक् रूप से कर दी गई थी। दुर्ग के भीतर इसकी स्थिति प्रमाणित करती है कि मोहनजोदड़ों के नगर–जीवन में इसका स्थान अत्यन्त विशिष्ट रहा होगा। सम्भव है कि सार्वजनिक लाभ के ध्येय से यह स्वयं राज्य द्वारा ही निर्मित रहा हो। नृत्य–वाद्य अथवा विशेष पर्वो एवं समारोहों का आयोजन तथा विशिष्ट पुरवासियों की सभा एवं बैठक आदि की व्यवस्था इसमें की जाती होगी। मोहनजोदड़ों के उत्खनन में प्राप्त सुप्रसिद्ध नर्तकी–मूर्ति इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि तत्कालीन नागरिक नृत्य एवं वाद्य के कार्यक्रम द्वारा पारस्परिक मनोविनोद करते रहे होंगे। इस सभा–भवन के निर्माण का प्रयोजन जन–समुदाय का लाभ एवं कल्याण रहा होगा।

इसके अतिरिक्त एक अन्य सम्भावना यह भी हो सकती है कि सैन्धव सभ्यता–कालीन यह मण्डप राजसभा अथवा राजपुरूषों या कुलीन वर्ग के विशिष्ट सदस्यों की बैठक के निमित्त बना हो।

अवम पुर– अवम पुर (लोवर सिटी) मोहनजोदड़ों के नगर का पूर्वी भाग था, जिसका प्रतिनिधित्व आधुनिक निम्न किन्तु विस्तृत क्षेत्र में प्रसरित टीलों द्वारा किया जाता है। पुरातत्ववेत्ताओं का अनुमान है कि यह पुरभाग न तो प्राकारयुक्त था और न परिखा परिवेष्ठित ही था। इससे स्वाभाविक निष्कर्ष यह निकलता है कि इसमें जनसाधारण के निवासगृह विद्यमान थे। यही कारण है कि इसके चतुर्दिक् सुरक्षा–भित्ति के उठाने की आवश्यकता नगर–मापन के अधिकारियों को प्रतीत नहीं हुई थी। तथापि इस नगर–भाग का भी सन्निवेश सतर्कतापूर्वक सुव्यवस्थित योजना द्वारा किया गया था। विशेषतः राजमार्गों के निर्माण में अभियन्ताओं ने कार्य–कुशलता का श्लाघनीय परिचय प्रदान किया था। पुरातत्वीय योजना द्वारा प्रकाश में लाई गई वहाँ की सड़कें एक दूसरे के समानान्तर तथा परस्पर समकोण पर विभक्त करती हुई देखी जा सकती थीं। इस विशेषता ने पाश्चात्य पुराविदों को अभिमत प्रभावित किया था। चत्वरों पर प्रहरी–कक्ष निर्मित थे। इस निर्माण–पद्धति द्वारा अवम नगर सम परिमाण के आयताकार मण्डलों में विभक्त हो गया था। प्रत्येक मण्डल लगभग 400 गज लम्बा एवं 270 गज चौड़ा था। पुरातत्वीय उत्खननों द्वारा सात पुर–मण्डल प्रकाश में लाए गए थे। इन मण्डलों का पारस्परिक विभाजन सुनिर्मित ठोस राजमार्गों द्वारा किया गया था, जिनमें से कुछ तो तीस फिट तक चौड़े थे। प्रत्येक मण्डल 5 फिट से लेकर 10 फिट चौड़ी वीथिकाओं द्वारा उपमण्डलों में विभक्त हो गया था।[39]

मार्टिमर ह्वीलर ने अवम नगर के गृहसन्निवेश एवं स्वच्छता– व्यवस्था की विशेषताओं की उच्च प्रशंसा की है। राजमार्गों के किनारे पकी ईंटों द्वारा निर्मित नालियाँ विद्यमान थीं, जिनके माध्यम से पुर की गन्दगी बाहर निकाल दी जाती थी। सड़कों की पटरियों अथवा उनके बगल में यथोचित स्थानों पर कूड़ा फेंकने के निमित्त व्यवस्था की गई थी। राजकीय स्वच्छता–श्रमिकों द्वारा एकत्र अशौच समयानुसार स्थानान्तरित कर दिया जाता था। प्रत्येक घर का गन्दा पानी मिट्टी के प्रणालक अथवा व्यक्तिगत नालियों द्वारा राजमार्गों के किनारे की नालियों में पहुँचाया जाता

था। इस कोटि की स्वच्छता व्यवस्था तत्कालीन जगत् में सर्वथा अद्वितीय थी। यह पद्धति उस प्राचीन युग में ही, भारतीय अभियन्ताओं की प्रवीणता एवं विज्ञानपरक मेधा का विलक्षण परिचय प्रदान करती है।[40]

कतिपय पाश्चात्य पुराविदों के अनुसार हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ों के नगर तत्कालीन विश्व के लन्दन एवं वेस्टमिस्टर थे। लैम्ब्रिक का अनुमान है कि मोहनजोदड़ों की जनसंख्या कुल पैंतीस सहस्र (35000) के लगभग रही होगी। उनकी यह अवधारणा उस गणना पर अवलम्बित है, जिसके अनुसार सिन्ध में 1841 ईसवी में समान परिमाण के नगर की औसत जनसंख्या इसी के लगभग हुआ करती थी। हड़प्पा के नगर का विस्तार मोहनजोदड़ों के ही सदृश था। अतएव इस पुर की भी जनसंख्या इसी के लगभग रही होगी।[41]

३. निर्माण–सिद्धान्त

पुरातत्त्वीय साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि सैन्धव सभ्यता काल में ही गृह–सन्निवेश की सुनियोजित शैली भारतीय शिल्पियों द्वारा आविर्भूत की जा चुकी थी। उस समय के स्थपतियों का दृष्टिकोण व्यावहारिक एवं उपयोगिता–वादी था। ये भवन मनुष्य के दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की सम्पूर्ति में सक्षम थे। हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ों के गृह हमारे देश के सुखद आवासों के प्राचीनतम उदाहरण माने जा सकते हैं।[42] इन भवनों के विन्यास में सादगी के सिद्धान्त का प्रतिबिम्ब स्पष्ट रूप में परिलक्षित होता है। प्रयोगवादी भावना के कारण ही अभियन्ताओं ने इनके वास्तु में अलंकरण अथवा सजावट को महत्व नहीं प्रदान किया था। इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए सर जान मार्शल ने प्रतिपादित किया था कि इन भवनों में प्रयुक्त काष्ठ–शिल्प में ही कारीगरों द्वारा काट–छाँट अथवा विशेष बारीकी को उभाड़ने का प्रयास किया गया था।[43] स्थापत्य के इस पहलू का संभावित कारण यह हो सकता है कि लकड़ी की महीन गढ़ाई का कार्य भारत वर्ष की अति प्राचीन लोकप्रिय परम्परा थी। यही कारण है कि वर्द्धकी (बढ़ई) के व्यवसाय को प्राचीन ग्रन्थों में बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखा गया है।

यद्यपि ये भवन सादगी के सिद्धान्त पर निर्मित थे, तथापि वे अपनी सुदृढ़ता एवं निर्माण की उत्कृष्टता के लिए प्रख्यात थे। इनकी नींव काफी गहराई तक दी गयी थी। अनगढ़ ईंटें आधार वाले भाग में ही प्रायः बिठाई गई थीं। परन्तु धरातल के ऊपर की भवन–भित्ति में गढ़ी हुई पकी ईंटों की चुनाई की गई थी। विशाल आवास–गृहों की दीवालें अपेक्षाकृत ऊँची थीं। उनके ऊपर प्रायः मिट्टी का लेप चढ़ाने की परम्परा प्रचलित थी। बालू, शिलाचूर्ण, चूना एवं खड़िया मिट्टी से मिश्रित किसी प्रकार के विशेष मसाले का सम्भवतः उस पर आविष्कार हो चुका था। बाहरी एवं भीतरी दीवालों को प्रायः सीधी उठाने की प्रथा विद्यमान थी। सुदृढ़ता के अभिप्राय से कभी–कभी बड़े भवनों की बाहरी दीवालें तिरछी उठाई जाती थीं। परन्तु यह प्रथा अति सीमित थी। भवन–भित्तियों को प्रायः लम्बवत् (प्रलम्ब) ही निर्मित किया जाता था। कतिपय भवनों की भित्तियों के बाह्य रूप में ईंटों को रगड़ कर सहज प्रभा उभाड़ दी जाती थी।

सैन्धव सभ्यता में हर घर के मुख्य द्वार (प्रवेश द्वार) के भीतर घुसते ही भवन का भीतरी दृश्य सामने आ जाता था। केन्द्रीय स्थान में एक खुला आँगन हुआ करता था, जिसके चतुर्दिक् बरामदे एवं कोठरियाँ बनी होती थीं। धनिक नागरिकों अथवा सत्ताधारियों के घरों में गलियारे एवं बड़े कक्ष हुआ करते थे। इन्हीं के सिद्धान्तों के आदर्श पर कालान्तर में ऐतिहासिक काल में 'चतुश्शाल–गृह' निर्मित होने लगे, जिनका वर्णन प्राचीन साहित्य में बहुशः प्राप्य है। भवनों की छत प्रायः सपाट हुआ करती थी। इसके भार को सँभालने के निमित्त लकड़ी की कड़ियाँ एवं बड़ेरें बिठाई जाती थीं।[44] यह प्रथा हमारे देश में अब भी विद्यमान है। कच्चे घरों की छत खपरैलों से छाई जाती थीं आदर्श घरों की फर्शों में मजबूती पकड़ने के लिए पकी ईंटों की चुनाई की प्रथा प्रचलित थी। स्नानगृह की फर्श को अधिक सुदृढ़ करने का प्रयास किया जाता था।, क्योंकि उनका प्रयोग विशेष रूप में हुआ करता था। मार्शल का अनुमान है कि सैन्धव सभ्यताकालीन महत्वपूर्ण गृहों में शिखरों के निर्माण की भी प्रथा प्रचलित रही होगी। इस तथ्य की अभिव्यंजना उनकी दीवालों की स्थूलता, ऊँचाई एवं सुरक्षा–उपायों से उपलब्ध होती है। मार्शल को 97 फिट लम्बे एवं 85 फिट चौड़े नागरिक शालाओं के पुरातत्वीय दृष्टान्त उपलब्ध हुए थे। इनकी बाहरी दीवालें सामान्यतया 4 से 5 फिट तक चौड़ी हुआ करती थीं।[45]इस कोटि के कतिपय घरों के आँगन कभी–कभी 32 फिट लम्बे एवं इतने ही चौड़े भी थें इनकी फर्श में ठोस ईंटें जड़ दी गयी थीं एवं उनके किनारे–किनारे नालियाँ बनी होती थीं। उनका मत है कि सिन्धु–उपत्यका के नगर–निवासी अपने देवालयों को भी विशाल मापदण्ड पर निर्मित करते थे। उनके अवशेषों में अँगूठी की आकृति से सादृश्य रखने वाले गोल पत्थर सम्भवतः पूजा एवं आराधना के विषय थे।

जल की सुविधा की दृष्टि से इनमें कुँआ भी हुआ करता था। भवन के जिस प्रकोष्ठ में कूप विद्यमान होता था, वहाँ कभी–कभी बाहर से पहुँचने के निमित्त रास्ता भी खोल देते थे। जिससे आवश्यकता पड़ने पर बाहरी व्यक्तियों द्वारा भी उनका प्रयोग सम्भव हो सके। यह व्यवस्था उन्हीं नागरिकों के गृहों में प्राप्य थी, जो जनकल्याण अथवा

Vol. 9, Issue: 7, July: 2021
ISSN:(P) 2347-5404 ISSN:(O)2320 771X

सार्वजनिक लाभ को भी महत्ता प्रदान करते थे। सिन्धु–उपत्यका की नगर–शालाओं का निर्माण अंशतः ईंटों और अंशतः लकड़ी द्वारा भी हुआ था।

हड़प्पा मोहनजोदड़ों एवं के अवशेषों द्वारा सोपानों के निर्माण के प्रमाण भी प्रकाश में आए हैं, जिनसे अनुमान लगाया जा सकता है कि वे कम–से–कम एक ऊपरी मंजिल से भी युक्त अवश्य ही रहे होंगे। सुविधा की दृष्टि से इनके सोपानों के दोनों ही किनारों पर लकड़ी अथवा ईंटों के कठघरे निर्मित होते थे। तत्कालीन सीढ़ियों का निर्माण सदोष केवल इसी दृष्टि से था कि इनकी सीढ़ियाँ पतली एवं किंचित् झुकी होती थीं, परन्तु अन्य अर्थों में इनका वास्तु उस युग के अनुसार अनवद्य था। सम्भव है कि कतिपय भवनों में सीढ़ियाँ सम्पूर्ण रूप से लकड़ी की ही बनी हों। परन्तु प्रचलित प्रथा के अनुसार ईंटों के ही सोपान बहुधा निर्मित हुआ करते थे। ऊपरी मंजिलों पर भी शयन–कक्ष, स्नान–गृह एवं विविध प्रयोजनों के निमित्त कमरे (प्रकोष्ठ) निर्मित थे। सबसे ऊपरी मंजिल की छत पर किनारे–किनारे सुरक्षा की दृष्टि से वेदिका अथवा ईंटों के कठघरे बने होते थे। इन भवनों की ऊपरी छत हवादार हुआ करती थी, जिसके एकान्तिक वातावरण में अन्तःपुर के सदस्यों के मनबहलाव के लिए व्यवस्था उपलब्ध हो जाती थी।[47]

४. सफाई प्रबन्धन

सैन्धव सभ्यता–काल के शिल्पी गृह–सन्निवेश की क्रिया में स्वच्छता के उपायों को प्रधानता दिया करते थे। यही कारण है कि प्रत्येक गृह में ईंटों की व्यक्तिगत नालियाँ बनी होती थीं, जिन्हें वैज्ञानिक रूप प्रदान करने के निमित्त ऊपर से ढक दिया जाता था। इनका मुँह राजमार्गों के समीप की मेड़ियों से लगा होता था। ऊपर की मंजिलों के स्नानगृहों से पानी को बहाने के निमित्त पाइप के सदृश आकार की पकी मिट्टी की नालियाँ निर्मित की जाती थीं। टूटने से बचाने के निमित्त मिट्टी की दोहरी परत द्वारा ईंटों को खोल चढ़ाकर चारों ओर से इन्हें ढक भी दिया जाता था। कभी–कभी भवन–भित्तियों के निर्माण के समय ही उनकी चौड़ाई में मोटे छिद्र नाली के रूप में बना दिए जाते थे, जिनके माध्यम से ऊपर का गन्दा पानी सड़कों की नालियों में गिरा दिया जाता था। राजमार्गों के दोनों किनारों पर वर्तमान इन मेड़ियों द्वारा समस्त दूषित तत्वों को नगर के प्रमुख परनालों में बहाने की व्यवस्था कर दी जाती थी।

यह स्वच्छता–व्यवस्था सिन्धु–उपत्यका के शिल्पियों के मस्तिष्क की मौलिक देन थी, जिसकी तुलना समकालीन बाह्य सभ्यताओं में अप्राप्य थी। पाश्चात्य विद्वानों ने तत्कालीन भारतीय अभियन्ताओं के वैज्ञानिक दृष्टिकोण की प्रचुर प्रशंसा की है। स्वच्छ वायु एवं प्रकाश की सुव्यवस्था के निमित्त चौड़े दरवाजों के निर्माण की प्रथा प्रचलित थी। इन्हें बन्द करने के लिए लकड़ी के कपाट बने होते थें घर की भीतरी दीवालों में खिड़कियों के अधिक खोलने की परम्परा विद्यमान थी। इस प्रकार की सुव्यवस्था द्वारा भवन के भीतर हवा एवं उजाले का प्रबन्ध संभव हो जाता था। बाहरी दीवालों में भी खिड़की एवं कभी–कभी रोशनदान भी बनाए जाते थे, परन्तु यह प्रथा अभी सीमित ही थी। इन्हें बन्द करने के निमित्त काष्ठ–फलक हुआ करते थे।[48]

५. नगर प्रबन्धन एवं प्रशासन

सैन्धव सभ्यता के विभिन्न स्थलों की खुदाई के दौरान पाये गये साक्ष्यों के आधार पर विद्वानों का अनुमान है कि इस सभ्यता के निवासियों ने एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार का निर्माण किया था अन्यथा व्यवस्थित नगर–योजना, समान नाप तौल के साधन, एक–दूसरे को समकोण पर काटती हुई सड़कें, स्वच्छता, सफाई आदि की व्यवस्था सम्भव नहीं हो पाती। विद्वानों का यह भी अनुमान है कि शासन पर धर्म का प्रभाव था।[49] डॉ0 ए.एल. बाशम के अनुसार हड़प्पा के निवासियों की शासन–व्यवस्था धर्म से प्रभावित थी। परन्तु आधुनिक विद्वानों ने यह भी विचार प्रस्तुत किया है कि वहाँ की शासन व्यवस्था व्यापारियों के हाथों में थी।[50] यद्यपि शासन व्यवस्था के बारे में पूर्ण विश्वास के साथ तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु धारणा यह बनती है कि सम्भवतः यहाँ राजतन्त्रीय व्यवस्था नहीं थी।[51]

हण्टर महोदय का मत है कि सिन्धुवासियों का शासन जनतन्त्रात्मक था। शासन की सत्ता किसी एक व्यक्ति अथवा राजा में केन्द्रित न होकर जनता के प्रतिनिधियों में केन्द्रित थी। मैके महोदय का मानना है कि शासन सत्ता किसी एक प्रतिनिधि शासक के हाथ में रही होगी, ह्वीलर का मानना है कि पुजारी वर्ग के हाथ में सत्ता रही होगी। जबकि पिगट महोदय का मानना है कि शासन तन्त्र पर पुजारी वर्ग का विशेष प्रभाव रहा होगा। शासन का स्वरूप चाहे जो रहा हो इतना निश्चित प्रतीत होता है कि केन्द्रीय सत्ता का विकेन्द्रीकरण हो गया था। और लोगों को स्थानीय शासन का दायित्व सौंप दिया गया था। स्थानीय लोग अपने प्रतिनिधियों अथवा अधिकारियों के माध्यम से

स्थानीय शासन तन्त्र चलाते थे।[52] कुछ विद्वानों का मानना है कि विशाल सिन्धु साम्राज्य में सुव्यवस्था एवं शान्ति बनाये रखने की दृष्टि से दो शासन केन्द्रों की स्थापना की गई थी, उत्तर में हड़प्पा और दक्षिण में मोहनजोदड़ों। मैके महोदय का मत है कि नगरों की सुरक्षा तथा शान्ति स्थापना के लिए पुलिस अथवा सुरक्षा सेना की व्यवस्था रही होगी। दोनों नगरों में प्राप्त दुर्गों के भग्नावशेष इस बात को प्रमाणित करते हैं कि सम्भवतः यहाँ पर कोई नगरपालिका या म्यूनिसिपल कारपोरेशन था जो इन समस्त व्यवस्था को व्यवस्थित रखते थे। जिनमें जनता की भागीदारी भी महत्वपूर्ण होती थी।[53]

सन्दर्भ

1. उदयनारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, पृष्ठ 2
2. जानमार्शल, मोहनजोदड़ो एण्ड दी इंड्स सिविलाइजेशन, पृ0 106; मार्टिमर व्हीलर, दी इंड्स सिविलाइजेशन, पृ0 86
3. उदयनारायण राय, पूर्वोक्त, पृ0–2
4. मार्टिमर व्हीलर, दी इंड्स सिविलाइजेशन, पृ0 16
5. उदयनारायण राय, पूर्वोक्त, पृ0–3
6. वही, पृ0 3
7. वही, पृ0 4; मार्टिमर व्हीलर, पृ0 26
8. एम. ह्वीलर, दि इंडस सिविलाइजेशन, पृ0 27
9. उदयनारायण राय, पूर्वोक्त, पृ0–4
10. एम. ह्वीलर, दि इंडस सिविलाइजेशन, पृ0 26–27
11. वही, पृ0 29–30
12. उदयनारायण राय, पूर्वोक्त, पृ0–5
13. एम. ह्वीलर, पूर्वोक्त, पृ0–34
14. जानमार्शल, पूर्वोक्त, पृ0 107–8
15. वही, पृ0 108–109
16. एम. ह्वीलर, पूर्वोक्त, पृ0–34
17. उदयनारायण राय, पूर्वोक्त, पृ0–7
18. वही, पृ0–8
19. एम. ह्वीलर, पूर्वोक्त, पृ0–27
20. उदयनारायण राय, पूर्वोक्त, पृ0–8
21. महाभारत, शान्ति पर्व, अध्याय 87
22. अर्थशास्त्र, पृ0 51 (शामा शास्त्री–संस्करण)
23. युक्तिकल्पतरु पृ0–24
24. समरांगणसूत्रधार, पृ0–40
25. अर्थशास्त्र, पृ0 52 (शामा शास्त्री–संस्करण)
26. उदयनारायण राय, पृ0–9
27. ब्रह्माण्ड पुराण, अध्याय–7, पंक्ति 225
28. अष्टमार्ग महारथ्याम हरिवंश, विष्णुपर्व, अध्याय–98
29. उदयनारायण राय, पूर्वोक्त, पृ0–10
30. एम. ह्वीलर, पूर्वोक्त, पृ0–29
31. जानमार्शल, पूर्वोक्त, पृ0 112–113
32. अल्चिन, दि बर्थ ऑफ इण्डियन सिविलाइजेशन, पृ0–246
33. ह्वीलर, दि इंडस सिविलाइजेशन, पृ0 26–27
34. उदयनारायण राय, पूर्वोक्त, पृ0–12
35. ए.एल. बाशम, दि वंडर दैट वाज़ इण्डिया, पृ0–18
36. जानमार्शल, पूर्वोक्त, पृ0 131–132
37. उदयनारायण राय, पूर्वोक्त, पृ0–13
38. वही, पृ0–13–14
39. वही, पृ0–15
40. वही, पृ0–15–16

41.अल्चिन, दि बर्थ ऑफ इण्डियन सिविलाइजेशन, पृ0—245—246
42.उदयनारायण राय, पूर्वोक्त, पृ0—16—17
43.जानमार्शल, पूर्वोक्त, पृ0 120—121
44.वही, पृ0—123
45.वही, पृ0—123—124
46.उदयनारायण राय, पूर्वोक्त, पृ0—17—18
47.वही, पृ0—18
48.वही, पृ0—18—19
49.शाहिद अहमद, प्राचीन भारत में नगर प्रशासन पृ0 24
50.वही, पृ0 24
51.एल. प्रसाद, प्राचीन और मध्यकालीन भारत, पृ0 1—3
52.शाहिद अहमद, प्राचीन भारत में नगर प्रशासन पृ0—24
53.शर्मा व्यास, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ0—32